SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

आदिवासी साहित्य में सामाजिक सरोकार

शक्ति कुमार, शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग,
विनोबाभावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड़, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
शक्ति कुमार, शोधार्थी,
राजनीतिक विज्ञान विभाग,
विनोबाभावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग,
झारखण्ड़, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 16/10/2020
Revised on : -----
Accepted on : 23/10/2020
Plagiarism : 01% on 16/10/2020

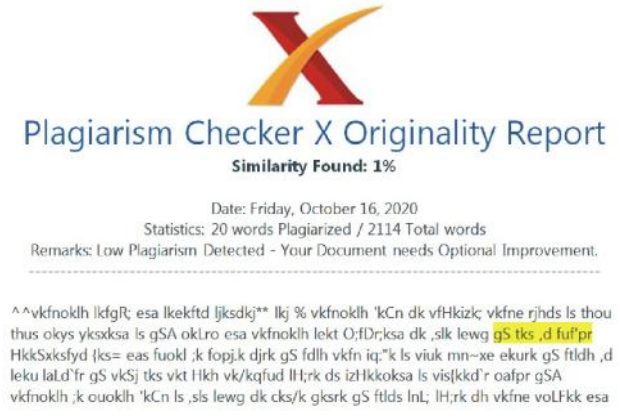
Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 1%

Date: Friday, October 16, 2020
Statistics: 20 words Plagiarized / 2114 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

^^vkfnoklh lkfgR; esa lkekftd ljksdkj** lkj % vkfnoklh 'kCn dk vfHkizk; vkfne rjhds ls thou thus okys yksxksa ls gSA okLro esa vkfnoklh lekt O;fDr;ksa dk ,slk lewg gS tks ,d ful'pr HkkSxksfyd {ks= eas fuokl ;k fopj.k djrk gS fdlh vkfn iq:"k ls viuk mn~xe ekurk gS ftldh ,d leku laLd`fr gS vkSj tks vkt Hkh vk/kqfud lH;rk ds izHkkoksa ls vis{kkd`r oafpr gSA vkfnoklh ;k ouoklh 'kCn ls ,sls lewg dk cks/k gksrk gS ftlds lnL; lH;rk dh vkfne voLFkk esa

शोध सार

आदिवासी शब्द का अभिप्राय आदिम तरीके से जीवन जीने वाले लोगों से है। वास्तव में आदिवासी समाज व्यक्तियों का ऐसा समूह है, जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास या विचरण करता है, किसी आदि पुरूष से अपना उद्‌गम मानता है, जिसकी एक समान संस्कृति है और जो आज भी आधुनिक सभ्यता के प्रभावों से अपेक्षाकृत वंचित है। आदिवासी या वनवासी शब्द से ऐसे समूह का बोध होता है जिसके सदस्य सभ्यता की आदिम अवस्था में निवास करते है। इस समूह का एक विशेष भू–प्रदेश एक भाषा, धर्म, प्रथा और परंपराए होती है। आदिवासियों के सामाजिक जीवन का आधार परिवार होता है। गोत्र, टोटम, युवागृह, धर्म तथा जादू टोना उनके सामाजिक जीवन की अन्य अभिव्यक्तियाँ है। वे एक सामाजिक ही नहीं बल्कि एक राजनैतिक इकाई भी है उनका अपना एक वंशानुगत मुखिया होता है।

किसी भी समाज के लिए साहित्य मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है। साहित्य के जानकार बनने पर लोगों में समाज निर्माण के गुण विकसित हो सकते है। साहित्य और समाज एक दूसरे से जुड़े हुए है मनुष्य साहित्य की राह पर चलकर न केवल भाषा का धनी बनती है बल्कि साहित्य के जानकार का मानसिक उत्थान भी संभव है।

मुख्य शब्द

आदिवासी साहित्य, सामाजिक सरोकार, साहित्यक विमर्श, सहअस्तित्व।

आदिवासी साहित्य

आदिवासी साहित्य कंठस्थ परंपरा पर आधारित होता है। जिसका सृजनकर्त्ता स्वयं आदिवासी लोग होते हैं। सामान्यतया अशिक्षित लोगों का साहित्य अर्थात् दृश्य–श्रव्य कलाभिव्यक्ति है। जिसका निर्माण का प्रक्रिया

निरंतर चतली रहती है। हालाँकि वर्तमान समय में आदिवासी साहित्य मौखिक व लिखित दोनो रूप में दिखाई पड़ रहा है। आदिवासी साहित्य में व्यक्तिगत साहित्य की अपेक्षा हितोपदेश यानि सामुदायिक हितो का ज्यादा प्रभाव है। जिसमें किसी प्रकार के व्याकरण या अनुशासन का बन्धन नहीं होता। आदिवासी साहित्य में पारंपरिक समाज का बहुत महत्व है। आदिवासी साहित्य में कला एवं सांस्कृतिक परंपरा की मौजूदगी होती है। जिसका जुड़ाव प्रकृति से होता है। आदिवासियों की अपनी भाषा बोली और संस्कृति होती है। आदिवासी जीवन दर्शन प्रत्यक्ष होता है। इनके समाज में महिला एवं पुरूषों दोनों का योगदान रहता है। परन्तु बिडम्बना यह है कि आदिवासी साहित्य में विशेष ग्रंथ बहुत कम मिलता है। हालांकि वर्तमान समय में पत्र–पत्रिकाओं, संगोष्ठियॉ भी अभी हो रही है।

सामाजिक सरोकार

'सामाजिक' शब्द का अर्थ है अपने समूह के प्रति जागरूकता अर्थात् जो व्यक्ति अपने समाज के प्रति चेतन रहते हैं, उन्हें सामाजिक व्यक्ति की संज्ञा दी जा सकती है। 'सरोकार' शब्द का सामान्य अर्थ किसी विषय वस्तु और घटना के परस्पर संबंध से है। किसी भी व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण तथा चितांजनक विषय अर्थात् जो सोचनीय है विचारणीय है। जिसमें वह स्वयं शामिल है वहीं उसके सरोकार होते है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो सरोकार से अभिप्राय व्यक्ति की चिंताओं महत्व तथा रूचि के विषयो और उससे जुड़े उसे प्रभावित करने वाले विषय तथा वस्तुओं से उसके संबंधों से है। साहित्यक संदर्भ में सामाजिक सरोकार का आशय है कि, रचना अथवा कृति का सामाजिक प्रयोजन क्या है? वह समाज से किस प्रकार से संबंध है अथवा वह समाज से किन–किन पक्षो रूपों आयामों मुददो एवं सरोकारों को किस रूप में चित्रित करती है। साहित्यकार समाज का प्रतिनिधि होता है। वह जिस समाज में रहता है उस सामाजिक परिवेश एवं वातावरण में निश्चित रूप से प्रभावित होता है।

आदिवासी साहित्य में सामाजिक सरोकार के प्रति दृष्टिकोण

आदिवासी लोगों को गैर–आदिवासियों द्वारा देखने का नजरिया अलग है। आज तक के इतिहासकारों एवं लेखकों और साहित्यकारों ने आदिवासी समाज को पूरी तरह नंगा करके रख दिया है। इनकी ऐसी तस्वीर पेश किया है कि वे आदमी ही नहीं है जो इस देश का मूलवासी या पहला व्यक्ति है, उसकी आज साहित्यकारों एवं लेखको ने इतिहासकारों की वजह से उस समाज का अलग व्यक्ति बन गया है। यह चिंता का विषय है। जितने भी लेखको ने आज लिखा है वह आदिवासी जीवन दर्शन को समझे बगैर उनके बारे में लिखा। यदि पूरे आदिवासी साहित्य जगत को देखा जाय तो उसमें यही लिखा है कि आदिवासी असुर है, सूअर है, बन्दर है, जंगली है, राक्षस है। आज भी जो लिखा जा रहा है। उसमें भी आदिवासी चींटी खाने वाले हैं, हड़िया दारू पीने वाले है। कुल मिलाकर आदिवासी को सभी तरह से नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। पहले जितने भी साहित्यकार इतिहासकार एवं लेखक रहे वे सभी गैर–आदिवासी रहे। गैर–आदिवासी लेखक जितना आदिवासी के बारे में लिख रहे है, वे सभी पूर्वाग्रह से ग्रसित है, परिणामस्वरूप वे आदिवासी समाज के साथ न्याय नहीं कर पा रहे हैं। हालांकि जितने भी आदिवासी लेखक है, भले ही वे आधुनिकता से अछूते न रहे हो फिर भी वे आदिवासी के बारे में लिख रहे है। दरअसल ये भी पूर्वाग्रह से ग्रसित है। ये भी वहीं लिख रहे है जो गैर–आदिवासी लिख रहे है– जैसे आदिवासी गरीब है, कैसे नाचता है? क्या खाता है? इत्यादि यदि आदिवासी दर्शन की बात करे तो पूरी दुनिया में सर्वश्रेष्ठ है। आदिवासी समाज प्रकृति के साथ जीते है, ये प्रकृति का उतना ही उपयोग करते है जितना जरूरत है। आदिवासी सामुदायिकता पर आधारित है, व्यक्तिवादी नहीं है।

आदिवासी लेखक	गैर–आदिवासी लेखक
➢ हरिराम मीणा	➢ रमणिका गुप्ता
➢ महादेव टोप्पो	➢ संजीव
➢ आईवी हॉंसदा	➢ राकेश कुमार सिंह
➢ तमसुला	➢ महुआ माजी
➢ दयामनी बारला	➢ बजरंग तिवारी

आदिवासी लेखक	गैर–आदिवासी लेखक
➢ लोको बोदरा ➢ ग्लैडसन डुंगडुंग ➢ एलिस एक्का ➢ कृपा कुजूर ➢ अनुज लुगुन ➢ एलिस एक्का ➢ रामदयाल मुण्डा ➢ रघुनाथ मुर्मू ➢ हलघर नाग ➢ सुशीला समद ➢ हाँसदा सोवेन्द्र शेखर ➢ जयपाल सिंह मुण्डा ➢ टिमोथी हेम्ब्रेम ➢ जंसिता केरकेट्टा	➢ गणेश देवी

आदिवासी समाज का जीवन

मनुष्य अपने परिवेश की उपज है उसे बेहतर बनाने के लिए उस परिवेश को बदलना होगा, जिसमें वह पलता है, बढ़ता है, और इसी परिवेश को आधुनिक समाज ने आर्थिक शब्दों में 'विकास' से विभूषित किया है। परन्तु आधुनिक विकास का जो मानदण्ड है उसे आदिवासी समाज स्वीकार करने में कोई दिलचस्पी नहीं रखता। आदिवासी समाज की न्यूनतम आर्थिक आवश्यकताएँ विकसित समाज के लिए चुनौती है। एक ऐसी चुनौती जो उपभोक्ता संस्कृति अथवा मीडिया संस्कृति से कोसो दूर प्रकृति की गोद में अमन–चैन की जिंदगी व्यतीत कर रहा है परन्तु हमें तो क्रमशः उसका विकास करना है। राष्ट्र की धारा से जोड़ना है। राष्ट्र की धारा से वह जुड़ना नहीं चाहता। प्रकृति का यह पुत्र विकास से दूर भागता है। उसे बंधन नहीं चाहिए, अनुदान नहीं चाहिए, बड़े–बड़े कारखाने नहीं चाहिए वह पूर्ण रूप से स्वतंत्र जीविका चलाना चाहता है।

आदिवासियों का समूचा जीवन उनकी संस्कृति समाज विशिष्ट क्रियाविधियों की वजह से निरंतर दिलचस्पी और अध्ययन का विषय बना रहा है। किवदंतिया अलग–अलग है और कई है, लेकिन सभी में उनका यह विश्वास व्यक्त हुआ है कि, वे सृष्टि शुरूआत से इस पृथ्वी के वासी है। वे सभ्य दुनिया की चकाचौंध से दूर अब भी पहाड़ों और जंगलों को अपना निवास बनाया हुआ है। प्रकृति से यह रिश्ता उनकी समूची दिनचर्या और तमाम रस्मों रीति–रिवाजों में प्रखरता से व्यक्त होता है। आदिवासियों का रहन–सहन उनका नृत्य संगीत उनकी सामाजिक व्यवस्था उनका अर्थात् उनकी संस्कृति सब विलक्षण और आकर्षित करने वाला है। धरती, पेड़, पर्वत, नदी, झरने और पशु पक्षियों से जीवन का संबंध स्थापित कर अपना सुखी जीवन व्यतीत करते है। उनकी दुनिया प्रायः विखण्डित दुनिया नही है और यदि वह भी तो आज की शहरी मानसिकता से एकदम अलग है।

आर्थिक विकास के साहित्य में आदिवासी समाज को बहुधा गरीब कह दिया जाता है। गरीब एक नितांत भिन्न अवधारणा है और साधारणतः आदिवासी परिदृश्य से उसका कोई संबंध नहीं है। परन्तु जो आदिवासी समाज अभी भी दुर्गम क्षेत्रों में रहते है जहाँ नैसर्गिक संसाधन इतने समृद्ध है कि जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ आसानी से पूरी हो जाती है। उन्हें हम गरीब नहीं कह सकते उनकी आवश्यकताएँ सीमित है और संसाधन प्रचुर मात्रा में है।

आदिवासी समाज सह–अस्तित्व पर आधारित

अमेरिकी आदिवासी के लिए राष्ट्र का मतलब जीने का तरीका है जीने का यह तरीका वह प्रकृति से सीखता है। दुनिया भर में आदिवासियों का संघर्ष धर्म को लेकर नहीं रहा उनका संघर्ष हमेशा अपनी संस्कृति को बचाने की

रहा है। इनकी संस्कृति प्रकृति के बचे रहने से ही बची रहेगी इसलिए उनका सांस्कृतिक संघर्ष प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण का संघर्ष भी बन जाता है। विकसित देशों में पर्यावरण मुद्दे आने से बहुत पहले से ही आदिवासी अपने अस्तित्व के संघर्ष के साथ ही पर्यावरण के संरक्षण की लड़ाई भी लड़ रहे है। आदिवासी दूसरी संस्कृतियो पर जीत के लिए उनके संसाधनों पर कब्जा करने लूटने और उन पर अपना धर्म थोपने के लिए नहीं लड़ते इसलिए उनके पर्व–त्योहार किसी पर जीत के जश्न का रूप नहीं होते। वे प्रकृति को उसका हिस्सा चढ़ाने कृतज्ञ होने धन्यवाद देने से जुड़े है। जब गाँव के लोग सामूहिक रूप से मछली मारते है तब उसे हर आदमी के लिए बराबर हिस्से में बाँटते है। सह अस्तित्व के इसी सिद्धान्त के तहत आदिवासी इलाको में जो समुदाय बाद में भी आये लोगों ने उनकी भी बसने के जमींने दी। मुण्डा आदिवासियों ने उराँव आदिवासियों (झारखण्ड) को अपने साथ बसाया। पहाड़िया आदिवासियों के आस–पास संताल आदिवासी बस सके। इसी सिद्धान्त के तहत हर आदिवासी गाँव में एक लोहार और एक रूई धुनने वाले परिवार को भी जगह दी गयी। इसी के तहत खाली हाथ उनके इलाको में आने वाले लोगों की भी आदिवासियों ने रहने की स्वीकृति दी। वे साथ बढ़े सहजीविता का यह एक लम्बा इतिहास है जिसे आदिवासियों ने आज भी बचाकर रखा है लेकिन आज भी बाजारवादी विकास के नाम पर वे अपनी जमीन–अपनी संस्कृति से बेदखल हो रहे है।

आदिवासी कहते हैं, जंगल असल अर्थ में हमें मुक्त करता है, वह हमें आजादी देता है। जंगल में हम अपनी तरह से कपड़े पहनने, अपने हिसाब से खाने–पीने, अपनी भाषा बोलने, धूमने–फिरने, साफ हवा–पानी, तरह–तरह के फल–फूल, जड़ी–बूटी के उपयोग के लिए आजाद होते है वो हमें संसाधन देते हैं हम उन्हें संरक्षण देते हैं। दुनिया को जंगल की तरह होना चाहिए जहाँ हर चीज अपनी विशिष्ट पहचान वेशभूषा, भाषा और जीने के अलग तरीके के साथ जिंदा रह सके। उसे समुद्र नहीं होना चाहिए जहाँ नदियो की पहचान खत्म हो जाती है। जब तक नदी उसमें नही मिलती है जनजीवन को जिंदा रखने की सभ्यता को बचाने की ताकत रखती है। मगर समुद्र मे मिलते ही कोई आदमी उसका पानी पी नहीं सकता। एक राष्ट्र को जंगल से जीने की कला सीखनी चाहिए। प्रकृति से जीने का तरीका सीखना चाहिए, यह तरीका सहजीविता का ही तरीका है आदिवासी किसी धर्म, किसी ग्रंथ से नहीं सीखते, प्रकृति से सीखते हैं। आज जब हम सह–अस्तित्व के भविष्य की बात करे तो हमें जाति भेद, रंग भेद व शास्त्रों से बाहर निकलना होगा और देश दुनिया की मूल संस्कृति को समझना होगा। प्रकृति को बचाने के लिए मूल लोगों के संघर्ष को समझना होगा। आदिवासी जो इतिहास वर्तमान और सह–अस्तित्व के भविष्य को जी रहे हैं, उनकी जीवन शैली और उस शैली के आज तक बचे रहने के कारणों की पड़ताल करनी होगी, इन सारी बातो को समझते हुए सह–अस्तित्व का नया भविष्य रच सकते हैं।

आदिवासी साहित्य विमर्श

चुनौतियॉ

आदिवासी लोक साहित्य सहित विविध कला माध्यमो का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका था लेकिन वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा मूलतः मौखिक रही। जंगलों में खदेड़ दिये जाने के बाद भी आदिवासी समाज ने इस पंरपरा को अनवरत जारी रखा।

झारखण्ड कलात्मकता का मूल स्वरूप है इसकी सामूदायिक अभिव्यक्ति साहित्य के क्षेत्र में इस अभिव्यक्ति को इस क्षेत्र के लोक साहित्य में देखा जा सकता है। जिसका स्वरूप लोकभावना के अनुरूप सर्वग्रहा और पुनरावृतिमूलक है। संगीत नृत्य में भी यही सामूहिकता सहभागिता दिखाई देती है।

आदिवासी समाज में आदिवासी साहित्य की कमी के चलते सामाजिक सरोकार स्थापित करने में समस्याएँ एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। जबतक समस्याएँ एवं चुनौतियाँ खत्म नहीं हो जाती तब तक सामाजिक सरोकार आदिवासी साहित्य में विद्यमान रहेगा।

समस्याएँ

1. आदिवासी भाषाओं को सत्ता द्वारा पूर्ण मान्यता नही।
2. संविधान प्रदत भाषा संस्कृति सुरक्षा के प्रावधानो का हनन।
3. मातृभाषाओं को शिक्षा माध्यम के रूप में प्रयोग के आभाव में साक्षरता की प्रगति धीमी।
4. विद्यालयों/महाविद्यालयों और अन्य शिक्षा संस्थाओं में यहाँ की भाषा को शिक्षण के माध्यम के रूप में मान्यता दिलाना।
5. झारखण्ड कला संस्कृति को गाँव स्तर तक पुनर्जीवित करना, मात्र शहरो में दिखाने के लिए नहीं।
6. भारत के आदिवासी समाज आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़ा हुआ है।
7. आदिवासी अपने क्षेत्र की संपूर्ण भूमि के स्वामी होते थे लेकिन वन कानून बनने के बाद वनो पर उनके प्राकृतिक आधिकार समाप्त हो गया।
8. युवागृहो का पतन जिसका प्रमुख कारण सभ्य समाज के साथ आदिवासियों का संपर्क।

निष्कर्ष

संप्रति आदिवासी साहित्य उत्थान पथ पर अधिक दूरी नहीं जा सका है। लेखको रचनाकारो के आपार सहयोग से आदिवासी साहित्य सृजन समृद्ध हो सकता है। इसलिए साहित्य सृजन में नये–नये लेखको को आगे आना चाहिए। साहित्य की सृजनात्मक अभिवृद्धि से भाषा, संस्कृति, समाज की समृद्धि निर्भर करती है और सशक्त साहित्य भाषा समाज संस्कृति इत्यादि को जोड़ती है, पल्लवित पुष्पित करती है एवं सांस्कृतिक रूप से विशेष पहचान देती है।

संदर्भ सूची

1. यादव, वीरेन्द्र सिंह, '*आदिवासी विमर्श*', पैसिफिक पब्लिकेशन दिल्ली, 2012, पृ. 125।
2. प्रभात खबर, 02 जुलाई 2020, पृ.–04।
3. अमीन, खन्नाप्रसाद, '*आदिवासी साहित्य* ', श्री नटराज प्रकाशन दिल्ली, 2016, पृ.–58, 59।
4. विश्वकर्मा, विनोद, '*हिन्दी उपन्यास और आदिवासी चिंतन*', अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.–311।
5. प्रभात खबर, 12 जून 2020, पृ.–09।
6. मुण्डा, रामदयाल, '*आदिवासी अस्तित्व और झारखण्डी अस्मिता के सवाल*', प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, 2002, पृ.–119
7. यादव, वीरेन्द्र सिंह, '*आदिवासी विमर्श*', पैसिफिक पब्लिकेशन दिल्ली, 2012, पृ.–127, 128।
8. इन्टरनेट।

****